विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान के समावेशन के प्रति शिक्षकों की धारणाएँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

[1]पल्लवी भारती* & [2]प्रोफेसर गोपाल कृष्ण ठाकुर

[1*]एम.एड. विद्यार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
ई-मेल: pallavibharti00542@gmail.com
[2]हेड & डीन, शिक्षा विभाग, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
ई-मेल: gkthakur11@gmail.com
DOI: doi.org/10.5281/zenodo.21627509

सारांश:

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को सांस्कृतिक रूप से अधिक संदर्भपरक, अनुभवाधारित तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा से संपृक्त बनाने की स्पष्ट दिशा प्रदान की है। इस नीति के प्रमुख उद्देश्यों में विद्यालयी शिक्षा को स्थानीय समुदाय, भारतीय ज्ञान-परंपरा, भाषाई विविधता तथा स्वदेशी जीवन-दृष्टि से जोड़ना शामिल है। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि पाठ्यचर्या का वास्तविक स्वरूप कक्षा-कक्ष में शिक्षक के माध्यम से ही मूर्त रूप ग्रहण करता है। यदि शिक्षक स्वदेशी ज्ञान की शैक्षिक उपयोगिता को स्वीकार करता है, तो उसका समावेशन प्रभावी बन सकता है; किन्तु यदि वह इसे केवल सांस्कृतिक सामग्री अथवा परंपरागत सूचना के रूप में देखता है, तो पाठ्यचर्या में इसका समावेशन औपचारिक बनकर रह जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान के समावेशन के प्रति शिक्षकों की धारणाओं का विश्लेषण करना है। अध्ययन का आधार विद्यालयी पाठ्यचर्या में स्वदेशी ज्ञान पर किए गए एक लघु शोध का वह भाग है जिसमें मध्य विद्यालय स्तर के शिक्षकों से प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी प्राप्त की गई। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शिक्षक स्वदेशी ज्ञान को विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान, अनुभवात्मक अधिगम, पर्यावरणीय चेतना तथा मूल्यपरक शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं। साथ ही, वे यह भी स्वीकार करते हैं कि शिक्षण-सामग्री की कमी, स्थानीय ज्ञान के प्रामाणिक स्रोतों का अभाव, अपर्याप्त शिक्षक-प्रशिक्षण तथा परीक्षा-प्रधान व्यवस्था इसके प्रभावी क्रियान्वयन में बाधक हैं। अध्ययन का निष्कर्ष है कि स्वदेशी ज्ञान का समावेशन केवल पाठ्यचर्या में विषय-वस्तु जोड़ देने से संभव नहीं है। इसके लिए शिक्षक-शिक्षा, स्थानीय समुदाय की सहभागिता, शिक्षण-अधिगम संसाधनों का विकास तथा मूल्यांकन प्रणाली में परिवर्तन अनिवार्य है। तभी राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक एवं समावेशी शिक्षा का लक्ष्य वास्तविक रूप से साकार हो सकेगा।

मुख्य शब्द: *स्वदेशी ज्ञान, शिक्षक-धारणाएँ, विद्यालयी शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, भारतीय ज्ञान-परंपरा, पाठ्यचर्या।*

भूमिका:

शिक्षा किसी भी समाज के सांस्कृतिक, बौद्धिक और नैतिक विकास का प्रमुख आधार होती है। यह केवल ज्ञान के हस्तांतरण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज अपनी ऐतिहासिक स्मृतियों, सांस्कृतिक परंपराओं, जीवन-मूल्यों और सामूहिक अनुभवों को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाता है। इसलिए विद्यालयी पाठ्यचर्या का प्रश्न केवल यह नहीं है कि विद्यार्थियों को क्या पढ़ाया जाए, बल्कि यह भी है कि किन ज्ञान-परंपराओं को वैध, उपयोगी और शिक्षण योग्य माना जाए। यही कारण है कि समकालीन पाठ्यचर्या-विमर्श में ज्ञान की विविधता, सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व और स्थानीय अनुभवों को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था लंबे समय तक औपनिवेशिक ज्ञान-दृष्टि से प्रभावित रही, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय समुदायों द्वारा विकसित ज्ञान, लोक-अनुभव, पारंपरिक जीवन-कौशल और भारतीय ज्ञान-परंपरा विद्यालयी शिक्षा की मुख्यधारा से क्रमशः बाहर होते गए। इससे शिक्षा और जीवन के बीच एक ऐसी दूरी उत्पन्न हुई जिसमें विद्यार्थी विद्यालय में अर्जित ज्ञान को अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से जोड़कर देखने में कठिनाई अनुभव करने लगे। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में भारतीय शिक्षा-विमर्श में यह प्रश्न प्रमुखता से उभरा है कि क्या विद्यालयी शिक्षा वास्तव में विद्यार्थियों के जीवनानुभवों और सांस्कृतिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने इस प्रश्न का उत्तर भारतीय ज्ञान-परंपरा, स्थानीय भाषाओं, अनुभवात्मक अधिगम तथा समुदाय-आधारित शिक्षण को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाकर देने का प्रयास किया है। नीति स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करती है कि शिक्षा तभी सार्थक होगी जब वह विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हुए वैश्विक नागरिकता के लिए भी तैयार करे। इसी दृष्टि से विद्यालयी पाठ्यचर्या में स्वदेशी ज्ञान का समावेशन केवल सांस्कृतिक संरक्षण का प्रयास नहीं है, बल्कि शिक्षा को अधिक संदर्भपरक, समावेशी और जीवनोपयोगी बनाने की एक शैक्षिक रणनीति है।

इन सभी प्रयासों की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार शिक्षक है। पाठ्यचर्या चाहे कितनी ही समृद्ध क्यों न हो, उसका वास्तविक प्रभाव शिक्षक की समझ, विश्वास, दृष्टिकोण और शिक्षण-पद्धति पर निर्भर करता है। शिक्षक यदि स्वदेशी ज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टि से संगत, शैक्षिक रूप से उपयोगी तथा विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए आवश्यक मानता है, तो वह इसे रचनात्मक ढंग से कक्षा में रूपायित कर सकता है। इसके विपरीत, यदि वह इसे केवल परंपरागत सूचना अथवा सांस्कृतिक औपचारिकता मानता है, तो पाठ्यचर्या में इसकी उपस्थिति केवल प्रतीकात्मक रह जाती है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन शिक्षकों की धारणाओं का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी

ज्ञान के समावेशन को शिक्षक किस प्रकार देखते हैं, वे इसकी संभावनाओं और सीमाओं का मूल्यांकन कैसे करते हैं, तथा प्रभावी क्रियान्वयन के लिए किन शैक्षिक परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

स्वदेशी ज्ञान, शिक्षक और पाठ्यचर्या : एक वैचारिक परिप्रेक्ष्य

स्वदेशी ज्ञान (Indigenous Knowledge) से आशय उस ज्ञान-सम्पदा से है, जिसका निर्माण किसी समुदाय ने अपने दीर्घकालीन जीवन-अनुभव, प्रकृति के साथ निरंतर संवाद, सामाजिक व्यवहार तथा सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से किया है। यह ज्ञान केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं है, बल्कि जीवन को समझने और उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने की एक समग्र दृष्टि है। कृषि, जल-संरक्षण, लोकचिकित्सा, हस्तशिल्प, लोककला, स्थानीय न्याय-व्यवस्था, सामुदायिक सहयोग तथा पर्यावरणीय संरक्षण जैसी अनेक परंपराएँ इसी ज्ञान-व्यवस्था का हिस्सा हैं। भारतीय संदर्भ में यह ज्ञान वेदों, उपनिषदों, आयुर्वेद, योग, लोकपरंपराओं तथा विविध जनजातीय और क्षेत्रीय समुदायों के जीवनानुभवों के रूप में विकसित हुआ है।

स्वदेशी ज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह जीवन से पृथक नहीं होता। आधुनिक शिक्षा में जहाँ ज्ञान को प्रायः विभिन्न विषयों और अनुशासनों में विभाजित करके प्रस्तुत किया जाता है, वहीं स्वदेशी ज्ञान जीवन, प्रकृति, समाज और संस्कृति को एक समग्र इकाई के रूप में देखता है। यहाँ सीखना केवल पुस्तकीय अध्ययन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि परिवार, समुदाय, कार्य-अनुभव, स्थानीय परिवेश और सांस्कृतिक सहभागिता के माध्यम से निरंतर विकसित होता है। इस दृष्टि से स्वदेशी ज्ञान अनुभवात्मक, संदर्भपरक और सामुदायिक ज्ञान की ऐसी परंपरा है जो शिक्षार्थी को अपने परिवेश के साथ सक्रिय संबंध स्थापित करना सिखाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 इसी व्यापक दृष्टिकोण को स्वीकार करते हुए भारतीय ज्ञान-परंपरा, स्थानीय भाषाओं, सांस्कृतिक विविधता, अनुभवात्मक अधिगम तथा समुदाय-आधारित शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग बनाने पर बल देती है। नीति का उद्देश्य केवल अतीत का गौरवगान करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हुए उन्हें समकालीन ज्ञान-विज्ञान से भी संवाद करने योग्य बनाना है। इसलिए स्वदेशी ज्ञान का समावेशन आधुनिक ज्ञान का विकल्प नहीं, बल्कि उसका पूरक है, जो शिक्षा को अधिक प्रासंगिक, जीवनोपयोगी और सामाजिक रूप से उत्तरदायी बनाता है।

यहीं पर शिक्षक की भूमिका निर्णायक हो जाती है। पाठ्यचर्या स्वयं शिक्षण नहीं करती; वह केवल एक रूपरेखा प्रस्तुत करती है। उसे अर्थपूर्ण अधिगम में परिवर्तित करने का कार्य शिक्षक करता है। शिक्षक ही यह निर्धारित करता है कि स्थानीय

ज्ञान को कक्षा में किस प्रकार प्रस्तुत किया जाए, विद्यार्थियों के अनुभवों को विषय-वस्तु से कैसे जोड़ा जाए तथा समुदाय को अधिगम की प्रक्रिया में किस सीमा तक सहभागी बनाया जाए। इस प्रकार शिक्षक केवल पाठ्यवस्तु का संप्रेषक नहीं, बल्कि ज्ञान का पुनर्सृजक (Knowledge Mediator) और सांस्कृतिक सेतु (Cultural Mediator) बन जाता है।

रचनावादी अधिगम-दृष्टि (Constructivism) भी इस भूमिका की पुष्टि करती है। इसके अनुसार विद्यार्थी ज्ञान को निष्क्रिय रूप से ग्रहण नहीं करता, बल्कि अपने पूर्व अनुभवों, सामाजिक अंतःक्रियाओं और सांस्कृतिक संदर्भों के आधार पर उसका निर्माण करता है। यदि शिक्षण विद्यार्थियों के स्थानीय अनुभवों और जीवन-जगत से जुड़ा हो, तो अधिगम अधिक स्थायी, अर्थपूर्ण और आलोचनात्मक बनता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (Culturally Responsive Teaching) यह मानता है कि विद्यार्थियों की भाषा, संस्कृति और सामाजिक पृष्ठभूमि को शिक्षण का आधार बनाया जाना चाहिए। इस दृष्टि से स्वदेशी ज्ञान का समावेशन केवल सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं, बल्कि गुणवत्तापूर्ण और न्यायपूर्ण शिक्षा का भी प्रश्न है।

यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा नीति और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा ने इस दिशा में स्पष्ट संकेत दिए हैं, तथापि इनका वास्तविक प्रभाव शिक्षकों की धारणाओं, विश्वासों और व्यावसायिक तैयारी पर निर्भर करता है। यदि शिक्षक स्वदेशी ज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रासंगिक, शिक्षण की दृष्टि से उपयोगी तथा विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए आवश्यक मानता है, तो वह उसे पाठ्यपुस्तक की सीमाओं से आगे ले जाकर जीवंत अधिगम-अनुभव में रूपांतरित कर सकता है। इसके विपरीत, यदि वह इसे केवल परंपरागत या सांस्कृतिक सामग्री मानकर चलता है, तो उसका समावेशन औपचारिक और सतही रह जाएगा।

इसी कारण शिक्षकों की धारणाओं का अध्ययन केवल मनोवैज्ञानिक अभिवृत्तियों का अध्ययन नहीं है; यह विद्यालयी पाठ्यचर्या की प्रभावशीलता का भी अध्ययन है। शिक्षक स्वदेशी ज्ञान को किस दृष्टि से देखता है, उसके प्रति उसका विश्वास कितना दृढ़ है, वह किन चुनौतियों का अनुभव करता है तथा किन प्रकार के संस्थागत सहयोग की अपेक्षा करता है—ये सभी प्रश्न यह निर्धारित करते हैं कि विद्यालयी शिक्षा वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की सांस्कृतिक और शैक्षिक आकांक्षाओं को किस सीमा तक साकार कर पाएगी।

अध्ययन की रूपरेखा एवं शोध-विधि

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान के समावेशन के प्रति शिक्षकों की धारणाओं का विश्लेषण करना है। अध्ययन इस मान्यता पर आधारित है कि किसी भी पाठ्यचर्या की प्रभावशीलता केवल उसके वैचारिक ढाँचे या नीति-दस्तावेज़ों से निर्धारित नहीं होती, बल्कि इस बात से भी निर्धारित होती है कि शिक्षक उसे किस प्रकार समझते हैं,

स्वीकार करते हैं और कक्षा-कक्ष में रूपायित करते हैं। इसी कारण अध्ययन में शिक्षकों की धारणाओं को विद्यालयी पाठ्यचर्या में स्वदेशी ज्ञान के प्रभावी क्रियान्वयन के एक महत्त्वपूर्ण संकेतक के रूप में ग्रहण किया गया।

यह अध्ययन **मिश्रित शोध उपागम (Mixed Methods Approach)** पर आधारित है, जिसमें गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के साक्ष्यों का समन्वित उपयोग किया गया। गुणात्मक पक्ष के अंतर्गत राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (विद्यालयी शिक्षा)–2023 तथा कक्षा 6 से 8 तक की विद्यालयी पाठ्यचर्या का विश्लेषण किया गया, जबकि मात्रात्मक पक्ष में शिक्षकों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण किया गया। इस प्रकार अध्ययन ने नीति, पाठ्यचर्या और शिक्षकीय अनुभव—इन तीनों स्तरों को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया।

अध्ययन के लिए महाराष्ट्र के वर्धा जनपद स्थित मध्य विद्यालयों का चयन किया गया। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन (Purposive Sampling) के आधार पर ऐसे शिक्षकों को सम्मिलित किया गया जो कक्षा 6 से 8 तक अध्यापन कार्य से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े थे। शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित एवं विशेषज्ञों से प्रमाणीकरण प्राप्त प्रश्नावली का उपयोग कर शिक्षकों से जानकारी संकलित की गई। प्रश्नावली में स्वदेशी ज्ञान की शैक्षिक उपयोगिता, पाठ्यचर्या में उसके प्रतिनिधित्व, कक्षा-शिक्षण में उसके प्रयोग तथा उसके क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों से संबंधित कथनों को सम्मिलित किया गया। प्रश्नावली की वैधता एवं विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के उपरान्त ही उसका अंतिम रूप निर्धारित किया गया।

प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी तथा व्याख्यात्मक विश्लेषण (Interpretative Analysis) की सहायता से किया गया। तथापि प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य केवल प्रतिशतों या आवृत्तियों का विवरण देना नहीं है, बल्कि शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के माध्यम से उन व्यापक शैक्षिक प्रवृत्तियों को समझना है जो विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान के समावेशन को प्रभावित करती हैं। इसलिए परिणामों की व्याख्या राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, भारतीय ज्ञान-परंपरा, रचनावादी अधिगम तथा सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण के व्यापक सैद्धान्तिक संदर्भ में की गई है। इस प्रकार अध्ययन केवल शिक्षकों की राय प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि ये धारणाएँ समकालीन पाठ्यचर्या-सुधारों की सफलता या सीमाओं की ओर किस प्रकार संकेत करती हैं।

शिक्षकों की धारणाएँ : विश्लेषण एवं विमर्श

विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान के प्रभावी समावेशन की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि शिक्षक इस अवधारणा को किस प्रकार समझते हैं। प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष संकेत करते हैं कि अधिकांश शिक्षक स्वदेशी ज्ञान को विद्यालयी शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण घटक मानते हैं। उनके अनुसार स्थानीय संस्कृति, परंपराएँ, पर्यावरणीय

अनुभव, लोकज्ञान तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा का समावेशन विद्यार्थियों के अधिगम को अधिक अर्थपूर्ण, संदर्भपरक और जीवनोपयोगी बनाता है। यह निष्कर्ष इस धारणा को पुष्ट करता है कि शिक्षक स्वदेशी ज्ञान को केवल सांस्कृतिक विरासत के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रभावी शैक्षिक संसाधन के रूप में स्वीकार करने लगे हैं।

शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे स्वदेशी ज्ञान को विद्यार्थियों की **सांस्कृतिक पहचान** के विकास से जोड़कर देखते हैं। उनका मत है कि जब शिक्षण स्थानीय भाषा, लोकपरंपराओं, सामुदायिक अनुभवों और क्षेत्रीय जीवन-पद्धति से जुड़ता है, तब विद्यार्थी न केवल विषय-वस्तु को बेहतर ढंग से समझते हैं, बल्कि अपने सामाजिक परिवेश के प्रति सम्मान और आत्मगौरव की भावना भी विकसित करते हैं। इस प्रकार स्वदेशी ज्ञान सांस्कृतिक संरक्षण का माध्यम भर नहीं रहता, बल्कि शिक्षा को विद्यार्थियों के जीवनानुभवों से जोड़ने वाला सेतु बन जाता है। यह निष्कर्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की उस मूल भावना के अनुरूप है, जिसमें शिक्षा को भारतीयता से जोड़ते हुए वैश्विक दृष्टि विकसित करने पर बल दिया गया है।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि शिक्षक अनुभवात्मक अधिगम के संदर्भ में स्वदेशी ज्ञान की उपयोगिता को विशेष महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार स्थानीय कृषि-पद्धतियाँ, जल-संरक्षण की पारंपरिक प्रणालियाँ, लोककला, हस्तशिल्प, स्थानीय इतिहास तथा समुदाय के ज्ञान-धारकों के अनुभव विद्यार्थियों के लिए ऐसे शिक्षण संसाधन हैं जो पुस्तकीय ज्ञान को वास्तविक जीवन से जोड़ते हैं। इससे अधिगम अधिक सक्रिय, सहभागितापूर्ण और स्थायी बनता है। इस दृष्टि से शिक्षकों की धारणाएँ रचनावादी अधिगम-दृष्टि का समर्थन करती हैं, जिसके अनुसार ज्ञान का निर्माण शिक्षार्थी अपने अनुभवों और सामाजिक अंतःक्रियाओं के माध्यम से करता है।

हालाँकि अध्ययन का दूसरा पक्ष यह भी स्पष्ट करता है कि शिक्षकों की सकारात्मक अभिवृत्ति के बावजूद स्वदेशी ज्ञान का प्रभावी क्रियान्वयन अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों से प्रभावित है। शिक्षकों ने सर्वाधिक चिंता **उपयुक्त शिक्षण-सामग्री के अभाव** को लेकर व्यक्त की। उनके अनुसार पाठ्यपुस्तकों में स्वदेशी ज्ञान का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु स्थानीय उदाहरणों, क्षेत्रीय अध्ययन-सामग्री और समुदाय-आधारित शिक्षण संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता नहीं है। फलतः शिक्षक स्वयं सामग्री खोजने के लिए बाध्य होते हैं, जिससे पाठ्यचर्या का प्रभावी क्रियान्वयन कठिन हो जाता है।

शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं से उभरकर आने वाली दूसरी महत्त्वपूर्ण चुनौती **व्यावसायिक तैयारी (Professional Preparedness)** से संबंधित है। अधिकांश शिक्षकों ने स्वीकार किया कि वे स्वदेशी ज्ञान के शैक्षिक महत्त्व को समझते हैं, किन्तु उसे विषय-विशेष के शिक्षण में किस प्रकार समाहित किया जाए, इसके लिए उन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ

है। शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में भारतीय ज्ञान-परंपरा, स्थानीय ज्ञान-स्रोतों, समुदाय-आधारित अधिगम तथा संदर्भपरक शिक्षण-पद्धतियों पर अपेक्षित बल न होने के कारण अनेक शिक्षक व्यवहारिक स्तर पर असमंजस का अनुभव करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि केवल पाठ्यचर्या में परिवर्तन कर देना पर्याप्त नहीं है; उसके समानांतर शिक्षक-शिक्षा की संरचना में भी परिवर्तन आवश्यक है।

यह स्थिति एक व्यापक शैक्षिक प्रश्न की ओर संकेत करती है। शिक्षक सामान्यतः उसी ज्ञान को कक्षा में अधिक आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत करता है, जिसके संबंध में उसे पर्याप्त वैचारिक स्पष्टता तथा पद्धतिगत दक्षता प्राप्त हो। यदि शिक्षक स्वयं स्थानीय ज्ञान-परंपराओं, लोकविज्ञान, पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान या सामुदायिक संसाधनों के शैक्षिक उपयोग से परिचित नहीं होगा, तो वह स्वदेशी ज्ञान को पाठ्यपुस्तक में उल्लिखित तथ्यों तक सीमित कर देगा। परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा अपेक्षित अनुभवात्मक और समुदाय-संबद्ध अधिगम व्यवहार में विकसित नहीं हो पाएगा।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि शिक्षक **स्वदेशी ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के बीच किसी विरोध** को स्वीकार नहीं करते। अधिकांश शिक्षकों का मत था कि दोनों ज्ञान-परंपराएँ परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि पूरक हैं। उदाहरण के लिए, स्थानीय कृषि-पद्धतियाँ, जैव-विविधता का पारंपरिक ज्ञान, वर्षा-जल संरक्षण, औषधीय पौधों का उपयोग अथवा स्थानीय मौसम संबंधी अनुभव आधुनिक विज्ञान की अवधारणाओं के साथ जोड़कर पढ़ाए जा सकते हैं। इससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होने के साथ-साथ वे यह भी समझ पाते हैं कि ज्ञान केवल प्रयोगशालाओं में ही नहीं, बल्कि समाज और समुदाय के जीवन-अनुभवों में भी विकसित होता है। यह दृष्टिकोण ज्ञान के लोकतंत्रीकरण (Democratisation of Knowledge) की दिशा में महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

शिक्षकों ने **समुदाय की सहभागिता** को भी स्वदेशी ज्ञान के प्रभावी समावेशन की अनिवार्य शर्त माना। उनका मत था कि स्थानीय कारीगरों, किसानों, लोककलाकारों, पारंपरिक चिकित्सकों तथा समुदाय के वरिष्ठ सदस्यों को समय-समय पर विद्यालयी गतिविधियों से जोड़ने पर विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होगा। इस प्रकार विद्यालय केवल औपचारिक शिक्षण का स्थान न रहकर समुदाय और शिक्षा के बीच संवाद का केन्द्र बन सकता है। यह विचार राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की उस अवधारणा के अनुरूप है जिसमें विद्यालय को स्थानीय समाज से जोड़ने तथा अनुभवात्मक अधिगम को प्रोत्साहित करने की बात कही गई है।

अध्ययन का एक अन्य उल्लेखनीय निष्कर्ष **मूल्यांकन प्रणाली** से संबंधित है। शिक्षकों का मानना था कि वर्तमान परीक्षा-केंद्रित व्यवस्था स्वदेशी ज्ञान की वास्तविक उपलब्धियों का समुचित मूल्यांकन नहीं कर पाती। स्वदेशी ज्ञान का अधिगम मुख्यतः अवलोकन, सहभागिता, समस्या-समाधान, स्थानीय परिस्थितियों की समझ तथा व्यवहारिक दक्षताओं पर

आधारित होता है, जबकि विद्यालयी परीक्षाएँ प्रायः तथ्यों के पुनरुत्पादन पर केंद्रित रहती हैं। फलतः शिक्षक अनेक बार ऐसी गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पाते जिनका प्रत्यक्ष संबंध परीक्षा से नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि यदि स्वदेशी ज्ञान को विद्यालयी शिक्षा में प्रभावी स्थान देना है, तो मूल्यांकन की अवधारणा को भी पुनर्विचारित करना होगा।

इन निष्कर्षों का व्यापक विश्लेषण यह संकेत करता है कि शिक्षकों की सकारात्मक धारणाएँ अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं। किसी भी शैक्षिक सुधार की सफलता के लिए चार स्तरों पर समानांतर परिवर्तन आवश्यक हैं—**नीति**, **पाठ्यचर्या**, **शिक्षक-शिक्षा** और **विद्यालयी संस्कृति**। यदि इन चारों के बीच समन्वय स्थापित नहीं होता, तो स्वदेशी ज्ञान का समावेशन केवल नीतिगत घोषणा बनकर रह जाएगा। दूसरी ओर, यदि शिक्षक को पर्याप्त प्रशिक्षण, संदर्भपरक शिक्षण-सामग्री, संस्थागत सहयोग तथा समुदाय के साथ कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो, तो वही स्वदेशी ज्ञान विद्यार्थियों के लिए जीवंत और अर्थपूर्ण अधिगम-अनुभव का आधार बन सकता है।

अध्ययन का यह पक्ष एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर करता है कि शिक्षक स्वदेशी ज्ञान को अतीत की स्मृति के रूप में नहीं, बल्कि **भविष्य की शिक्षा** के लिए उपयोगी संसाधन के रूप में देखने लगे हैं। उनकी दृष्टि में स्थानीय ज्ञान का समावेशन विद्यार्थियों में सांस्कृतिक आत्मविश्वास, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व, सामाजिक संवेदनशीलता तथा समस्या-समाधान की क्षमता विकसित कर सकता है। यह निष्कर्ष इस धारणा को पुष्ट करता है कि स्वदेशी ज्ञान का उद्देश्य आधुनिक शिक्षा का प्रतिस्थापन नहीं, बल्कि उसे अधिक मानवीय, संदर्भपरक और समावेशी बनाना है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान का प्रभावी समावेशन केवल पाठ्यचर्या-संशोधन का विषय नहीं है, बल्कि यह शिक्षा-दर्शन, शिक्षक-शिक्षा, विद्यालयी संस्कृति तथा सामुदायिक सहभागिता से जुड़ा व्यापक शैक्षिक प्रश्न है। शिक्षकों की सकारात्मक धारणाएँ यह संकेत करती हैं कि विद्यालयों में स्वदेशी ज्ञान को लेकर अनुकूल वातावरण विकसित हो रहा है, किन्तु इस संभावना को वास्तविक शैक्षिक उपलब्धि में रूपांतरित करने के लिए संस्थागत स्तर पर अनेक सुधार अपेक्षित हैं।

सबसे पहले, **पाठ्यचर्या-निर्माण** की प्रक्रिया में स्वदेशी ज्ञान को पृथक अध्याय अथवा अनुपूरक सामग्री के रूप में प्रस्तुत करने के स्थान पर उसे विभिन्न विषयों की अंतर्वस्तु में स्वाभाविक रूप से समाहित किया जाना चाहिए। विशेषतः सामाजिक विज्ञान, पर्यावरण अध्ययन, विज्ञान, भाषा तथा कला-शिक्षा जैसे विषय स्थानीय जीवन, लोकपरंपराओं और सामुदायिक अनुभवों से समृद्ध किए जा सकते हैं। इससे विद्यार्थियों को यह अनुभव होगा कि ज्ञान केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके सामाजिक परिवेश में भी विद्यमान है।

दूसरे, **शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों** में भारतीय ज्ञान-परंपरा, स्थानीय ज्ञान-स्रोतों, समुदाय-आधारित अधिगम तथा सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-पद्धतियों को व्यवस्थित रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए। पूर्व-सेवा और सेवाकालीन प्रशिक्षण में ऐसे मॉड्यूल विकसित किए जाएँ जो शिक्षकों को स्थानीय संसाधनों की पहचान, समुदाय के साथ शैक्षिक साझेदारी तथा अनुभवात्मक शिक्षण की रणनीतियों से परिचित कराएँ। इससे शिक्षक केवल नीति के निष्पादक नहीं, बल्कि स्थानीय ज्ञान के सृजनात्मक व्याख्याकार बन सकेंगे।

तीसरे, विद्यालयों और **स्थानीय समुदायों के मध्य सक्रिय साझेदारी** विकसित करना समय की आवश्यकता है। स्थानीय किसान, शिल्पकार, लोककलाकार, पारंपरिक चिकित्सक तथा समुदाय के वरिष्ठ नागरिक विद्यालयी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण संसाधन बन सकते हैं। इस प्रकार विद्यालय समुदाय से सीखने का केन्द्र बनेगा और शिक्षा अधिक जीवन-सापेक्ष तथा अनुभवाधारित होगी।

अंततः, **मूल्यांकन प्रणाली** में भी परिवर्तन अपेक्षित है। यदि शिक्षा का उद्देश्य अनुभव, कौशल, सहयोग, पर्यावरणीय संवेदनशीलता तथा सांस्कृतिक समझ का विकास है, तो मूल्यांकन केवल लिखित परीक्षाओं तक सीमित नहीं रह सकता। परियोजना-कार्य, क्षेत्र-अध्ययन, सामुदायिक सहभागिता, पोर्टफोलियो तथा प्रत्यक्ष अवलोकन जैसी मूल्यांकन-पद्धतियाँ स्वदेशी ज्ञान के अधिगम को अधिक प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त कर सकती हैं।

निष्कर्ष

विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान के समावेशन का प्रश्न वस्तुतः यह प्रश्न है कि शिक्षा किस समाज की स्मृतियों, अनुभवों और ज्ञान-परंपराओं को वैधता प्रदान करती है। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षकों का एक बड़ा वर्ग स्वदेशी ज्ञान को विद्यार्थियों के समग्र विकास, सांस्कृतिक आत्मबोध, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व तथा अनुभवात्मक अधिगम के लिए महत्त्वपूर्ण मानता है। उनके अनुसार स्थानीय जीवन-जगत से जुड़ी शिक्षण प्रक्रियाएँ विद्यार्थियों के अधिगम को अधिक अर्थपूर्ण, सहभागितापूर्ण और स्थायी बनाती हैं। यह निष्कर्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की उस मूल भावना की पुष्टि करता है जिसमें शिक्षा को भारतीय ज्ञान-परंपरा और स्थानीय संदर्भों से जोड़ने पर बल दिया गया है।

इसके साथ ही अध्ययन यह भी इंगित करता है कि नीति-स्तर पर स्वदेशी ज्ञान की स्वीकृति अपने आप में पर्याप्त नहीं है। प्रभावी क्रियान्वयन के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण, संदर्भपरक शिक्षण-सामग्री, विद्यालय-समुदाय साझेदारी तथा उपयुक्त मूल्यांकन प्रणाली जैसे आधारभूत पक्षों को समान रूप से सुदृढ़ करना आवश्यक है। अन्यथा स्वदेशी ज्ञान का समावेशन केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित रह जाएगा और उसका वास्तविक शैक्षिक प्रभाव विकसित नहीं हो सकेगा।

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि स्वदेशी ज्ञान को अतीत की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में देखने के स्थान पर भविष्य की शिक्षा के एक सशक्त बौद्धिक संसाधन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और स्वदेशी ज्ञान के बीच प्रतिस्पर्धा का नहीं, बल्कि संवाद और समन्वय का संबंध स्थापित करना ही समकालीन शिक्षा की आवश्यकता है। जब शिक्षक इस समन्वित दृष्टि के साथ शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का संचालन करेगा, तभी विद्यालयी शिक्षा वास्तव में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक, सामाजिक रूप से उत्तरदायी तथा जीवनोपयोगी बन सकेगी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वदेशी ज्ञान का प्रश्न केवल पाठ्यचर्या-सुधार का प्रश्न नहीं है; यह ज्ञान की लोकतांत्रिक अवधारणा, सांस्कृतिक न्याय और शिक्षा की सामाजिक प्रासंगिकता का भी प्रश्न है। इसलिए विद्यालयी शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान का प्रभावी समावेशन भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी, संदर्भपरक और मानवीय बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ:

बैटिस्टे, एम. (2002). *इंडिजिनस नॉलेज एंड पैडागॉजी इन फ़र्स्ट नेशन्स एजुकेशन: ए लिटरेचर रिव्यू विद रिकमेंडेशन्स*. इंडियन एंड नॉर्दर्न अफेयर्स कनाडा.

देई, जी. जे. एस. (2000). *रीथिंकिंग द रोल ऑफ इंडिजिनस नॉलेजेज इन द अकैडमी*. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इन्क्लूसिव एजुकेशन*, 4(2), 111–132.

धर्मपाल. (1983). *द ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस इंडियन एजुकेशन इन द एटीन्थ सेंचुरी*. बिब्लिया इम्पेक्स.

भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020*. शिक्षा मंत्रालय.

कुमार, कृष्ण. (2005). *पॉलिटिकल एजेंडा ऑफ एजुकेशन: ए स्टडी ऑफ कॉलोनियलिस्ट एंड नेशनलिस्ट आइडियाज़* (2nd ed.). सेज पब्लिकेशन्स.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. (2023). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा : विद्यालयी शिक्षा–2023*. एनसीईआरटी.

यूनेस्को. (2017). *लोकल एंड इंडिजिनस नॉलेज सिस्टम्स (लिंक्स)* प्रोग्राम. यूनेस्को.

वॉरेन, डी. एम. (1991). *यूज़िंग इंडिजिनस नॉलेज इन एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट*. वर्ल्ड बैंक.